International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-09-2021, Accepted: 13-10-2021, Published: 28-10-2021
Volume 7, Issue 5, 2021, Page No. 98-102

मछुआरा जीवन का संघर्ष और उनमें पनपते हुए राजनीतिक चेतना का विकास (नागार्जुन के द्वारा लिखित 'वरुण के बेटे 'उपन्यास के विशेष संदर्भ में...)

राजीव कुमार बेज
शोधार्थी, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना, भारत

सारांश
भारत जैसे विशाल देश में अभी अनेक प्रांतीय अंचल उपेक्षित है । अब भी वे मुख्य जन प्रवाह से कटे हुए हैं । वहाँ आज भी संचार संसाधनों की कमी है । आधुनिक जीवन शैली एवं सुविधाएं उनके लिए दुर्लभ है । अशिक्षा,अभाव और जड़ता से उनका जीवन जर्जर है । अनेक जातियाँ अभी सूदूरवर्ती प्रदेशों में शताब्दियों पूर्व का जड़ जीवन व्यतीत कर रहे हैं । आज भी उन्हें जीवन की छोटी सी छोटी सुविधाएं दुर्लभ है । हम देख सकते हैं कि आज के कुछ लेखक प्रांतीय अंचल में बसने वाले मछुआरों के प्रति रूमानी दृष्टि नहीं बल्कि मानवीय संवेदनाओं की दृष्टि से भी देख रहे हैं । ये वर्ग कई स्तरों पर हाने वाले उनके शोषण का पर्दाफाश कर रहे हैं । चाहे इन मछुआरा समाज के प्रति जमींदारों, भू स्वामियों तथा राजनीतिक पार्टियों का दृष्टि कोण कुछ अलग हो सकता है परंतु साहित्यकार कभी भी मूल्यवादी दृष्टि से विलग नहीं हुआ है । वह आज भी मानवता का प्रहरी है । वे निरंतर मानवीय संवेदनाओं का विस्तार करते हुए,जनता की लढ़ाई लढ़ रहे हैं । इसलिए हमें यह मानकर चलना चाहिए कि अभी उपन्यास मरा नहीं है । जिससे हाशिए में रहने वाले लोगों के यथार्थ जीवन को लोगों के सामने अभिव्यक्ति मिल पा रही है । अतः कह सकते हैं जब तक समाज तथा सहित्य में जनजीवन की संश्लिष्ट गाथा की आवश्यकता रहेगी । तब तक उपन्यास के विकास की संभावनाएं भी बनी रहेंगी।

मूलशब्द: मछुआरा जीवन का संघर्ष, राजनीतिक चेतना का विकास

प्रस्तावना

मछुआरा समाज का वजूद प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में विद्यमान रहा है । भारतीय सामाजिक संरचना की निर्मित अनेक संघर्षों, युद्धों, आर्य अनार्य संघर्षों एवं कबीलाई युद्धों से क्रमशः विकसित हुआ है । इस समाज का इतिहास लेखन ना होने के कारण इनके वंशजों का इतिहास निर्मित नहीं हो पाया है । जबकि इनका एक लंबा संघर्ष और इतिहास रहा है । जो हमें पुराणों में भी देखने को मिलता है । मछुआरा समाज को भारत में कई नामों से पुकारा जाता है । जैसे निषाद, मांझी, केवट, बिन्द, मल्लाह आदि प्रमुख है । इनका मूल कार्य मछली पकड़ना, मछली पालन करना और उसे बेचना है इनका दैनंदिन कार्य रहा है । यह इनका पारंपरिक पेशा कहलाता है । इस तरह गढ़- पोखर, नदी के किनारों पर भी जो मछुआरे पाए जाते हैं । उनका तो मछली पकड़ना,मछली पालन करना रोजमर्रा पेशे के साथ एक व्यापक व्यवसाय भी बन चुका है । परंतु देश स्वतंत्र होने के बाद भी उनका यह पारंपरिक पेशा छिनता चला जा रहा है । क्योंकि इन गढ़ पोखर पर पूंजीपतियों तथा भूस्वामियों का कब्जा होने लगा है ।

मछुआरों के जीवन संघर्ष और उनकी समस्याओं को लेकर हिंदी में कई महत्वपूर्ण उपन्यासों का सृजन किया

गया है । वास्तव में इतिहास लेखन या उपन्यास लेखन का यह एक सावल्टर्न वादी नजरिया है । जिसे वंचित वर्ग से आने वाले अधिकांश उपन्यासकारों ने अपनाया है । जिनकी चिंता के केंद्र में एक महत्वपूर्ण बिंदु यह भी है कि हमारा इतिहास क्यों नहीं लिखा गया ? नागार्जुन ने 'वरुण के बेटे' उपन्यास में मछुआरों के जीवन संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया गया है । मलाही-गोंढियारी गाँव के मछुआरे अपने जीविका के लिए विशाल जलाशय गढ़पोखर से मछली का व्यवसाय कर जीविका चलाते हैं । इस गढ़ -पोखर से मछुआरे के कई पुश्त मछलियाँ पकड़ते आए हैं ।"मलाही-गोंढियारी की संयुक्त अबादियों में आम किसान और खेत मजदूर कम नहीं थे किन्तु उनमें भी ज्यादा तादाद थी मछुओं-मांझियों की ही । इनकी भी चार-पाँच उपजातियाँ यहाँ थीं : सहनी, माँझी, खुनौत, तीअर, जलुआ । धनहा चौर और गढ़पोखर जैसे विशाल जलाशय ही इनके पूर्वजों को यहाँ खींच लाए थे ।"[1] पर कांग्रेसी शासन में जमींदारी-उन्मूलन के कारण जमींदार वर्ग किसी तरह सरकारी जमीन पर भी अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए कई हथकंडे अपनाते ।" जमींदारी-उन्मूलन के मुताबिक रैयतों से जमीन का लगान या मालगुजारी वसूल-तहसील करने के हकों से मौकूफ हो चुके थे । व्यक्तिगत जोत की जमीन, बाग-बगीचे, कुंआ-चभच्चा और पोखर, देवी-देवता के नाम पर चढ़ी हुई जायदाद,चरागाह, परती-परांत,नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ-एक अचल संपतियों के मामले में जमींदार-उन्मूलन कानून ने भू-स्वामियों को खुली छूट दे दी । नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चारगाहों तक को वे चुपके-चुपके बेचने लगे ।"...[2] देपुरा का जमींदार गढ़पोखर को सतघरा के जमींदार को दे देता है । नई बंदोबस्ती देकर ज्यादा से ज्यादा लाभ पाने के लिए सतघरा के जमींदार गढ़पोखर को दूसरे मछुआरों को सौंप देन चाहता है । "नया खरीददार सतघरा के जमींदार थे । वे लोग गरोखर को नए सिरे से बंदोबस्ती देकर ज्यादा से ज्यादा रकम बटोरना चाहते थे । उनमें से एक शासक दल का पूर्व और प्रतिष्ठित नेता भी था ।"[3] गढ़पोखर की मछलियाँ उनके लिए जीवन का प्रमुख साधन थीं । नए मालिक डरा-धमाकाकर, मुंह के कौर छीनकर, छाती पर संगीन की नोक का दबाव डालकर,फुसला बहलाकर चाहे कैसे भी हो, मछुओं से अपना प्रभुत्व मनवा लेने पर आमादा थे । इस उपन्यास का नायक मोहन माँझी इस नए सिरे से हो रही बंदोबस्ती के विरुद्ध मलाही-गोंढियारी गाँव के मछुआरों को लेकर लामबंद होता है । बूढ़ा गोनड़ इस व्यवस्था का विरोध करते हुए कहता है "यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते । पानी और माटी कभी न बिके है, और न कभी बिकेंगे । गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है । जिनगी का निचोड़ है ।"[4] दर पुश्त इस गरोखर से मछलियाँ निकालने का काम इस गाँव के लोग ही करते आ रहे हैं । यह कोई मामूली झील नहीं, यह तो इनके जीवन का आधार है । मोहन माँझी को विश्वास है कि जब इस गढ़-पोखर का उद्धार हो जाएगा तो मछुआरे समाज की जीवन शैली में परिवर्तन आ जाएगा कोई भूखा-नागा नहीं रहेगा वह इस गरोखर को लेकर जिंदगी की खुशियों का सपना देखता है "गढ़पोखर का जीर्णोद्धार होगा आगे चलकर और तब मलाही-गोंढियारी के ये ग्रामाञ्चल मछली-पालन-व्यवसाय का आधुनिकतम केंद्र हो जाएँगे । वैज्ञानिक तरीके से यहाँ मछलियाँ पाली जाएँगी । पुस से लेकर जेठ तक प्रति वर्ष अच्छी से अच्छी मछलियाँ अधिक से अधिक परिणाम में हम निकाल ले सकेंगे । एक-एक सीजन में पचास-पचास हजार रुपयों तक की आय होगी। मलाही-गोंढियारी का एक-एक परिवार गरोखर के बदौलत सुखी-सम्पन्न हो जाएगा । विशाल जलाशय की इन कछारों में हम किस्म-किस्म के कमलों और कुमुदिनियों की खेती करेंगे । पक्की-ऊंची भिंडो पर इकतल्ला सैनिटोरियम बनेगा, फिर दूर-पास के विश्रामर्थी आ-आकार यहाँ छुट्टियाँ मनाया करेंगे ।"[5] जब उसके सपने पर कुठराघात होता है तो वह गाँव के सभी लोगों को एकत्रित कर सामूहिक संघर्ष के लिए तैयार करते हुए उसकी एकता की शक्ति से पहचान

कराता है साथ ही किसान सभा जैसी जुझारू और सुदृढ़ संगठन का महत्व भी बताते हैं । वह छोटे-छोटे महासभा को विरोध कर समग्र रूप से आंदोलन करने की प्रेरणा देते हुए कहते है "किसान सभा देहातों में रहने वाले मेहनतकश लोगों का एकमात्र मिला-जुला सुदृढ़ संगठन है । हम लोग मछुआ हैं । सहनी, मुखिया, खुनौट, सोरहिया, बाँतर, तीयर, जलुआ, माँझी, खानदानी उपाधि किसी की कुछ है तो किसी की कुछ । मगर हैं फिर भी सब निषाद । किसी युग में हमारी संख्या थोड़ी थी उन दिनों नाव चलना और मछलियाँ पकड़ना ही हमारे पेशे थे । हम हमारी बिरदारी खेती भी करती है, मजदूरी भी । पढ़-लिखकर कुछ-एक भाई-बहन ऊंचे ओहदों पर भी पहुँच रहे हैं । समूचे भारत की बात छोड़ दें । बिहार की ही बात लीजिए अपनी बिरादरी के सैकड़ों लड़के आम बिहारी लड़कों और दूसरे-दूसरे प्रदेश के प्रवासी लड़कों के साथ मिल-जुलकर स्कूल-कॉलेजों में ज्ञान-विज्ञान हासिल कर रहे हैं । जात-पाँति की पुरानी दीवारें डह रही हैं, नए प्रकार की विशाल बिरादरी उनका स्थान लेने आ रही है । एकता का यह आलोक देहातों में भी प्रवेश कर चुका है । जब ऐसी बात है तो नाहक ही हमारी बिरादरी के चंद अगुआ निषादों के अलग संगठन का शंख फूंक रहे हैं । दो-चार स्वार्थी निषादों का इससे फायदा होगा, यह मैं मानता हूँ । मैथिली सभी, राजपूत सभा, यादव महासभा, दुसाद महासभा आदि जो भी सांप्रदायिक संगठन हैं सभी का बायकाट होनी ही चाहिए । इन महासभाओं के नेता आम आदमी के एकता में दरार डालने का ही एकमात्र काम करते हैं । देहातों में रहने वाली सारी जनता का खेती-किसानी से थोड़ा-बहुत लगाव रहता ही है,तो कैसे कोई किसान सभा की मेंबरी से इंकार करेगा ? गढ़पोखर हमारे हाथों से न निकले, इसके लिए हमें कोशिश करनी होगी । इस संघर्ष में निषाद महासभा,नहीं, किसान सभा जैसी जुझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है ।"[6] मोहन माँझी सभी मछुआरों को लाल झंडे के नीचे लाकर जन-आंदोलन कर अपना अधिकर पाने के लिए समग्र रूप से क्रांति का आह्वान करता है । नागार्जुन ने कांग्रेसी व्यवस्था में लूट-खसोट का पर्दाफ़ाश करते हुए उसे नीतियों और कार्यों पर भी चोट किया है । जब कोसी- बांध पर करोड़ों की लागत से काम शुरू होता है, उस समय श्रमदान के नाम पर किस तरह बाबुओं का जुटान होता है साथ ही उसके मनोरंजन के सारे समान जुटाए जाते हैं "भाइयों, खाते-पीते परिवारों के शौकिया श्रमदानी सज्जनों की बात ही और थी । उनकी सुविधा के अनेक साधन कोसी-किनारे जुट गए चाय-बिस्कुट,पान, सिगरेट, शर्बत-मिठाई, पूड़ी-कचौड़ी, छुड़ा-दही, रेडियो-सिनेमा, माइक-लाउड स्पीकर, अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ...कैमरावालों की भरमार थी ही, पास-पड़ोस के परिचित कांग्रेसी नेताओं की सिफ़ारिश से वे पटना या दिल्ली से आए हुए ऊंचे पदाधिकारियों के साथ भीड़ में खड़े हो जाते और फोटो खींच जाती । इन लोगों का श्रमदान क्या था,बैठे-ठाले का अच्छा-खासा मनोरंजन था ।"[7] वहीं छोटे-छोटे किसान-मजदूर रोजगार की तलाश में अपना श्रमदान देता है उसके बदले में उसे कई दिनों की भूख मिलती है "भूँजा फरही की पोटली बांधकर कोसी किनारे गया मैं इसलिए कि दस रोज बांध की मजूरी करूँगा,खाना-खेवा निकालकर कम से कम अठारह आना-बीस आना तो बचा ही लूँगा । चार-छै जू साथ के दाने चबा-चूबकर भूख को ठगता रहा, फिर उधार की खिचड़ी चलने लगी । पहली बार जिस बाबू ने नाम लिखा, वह दूसरी बार नहीं मिला । दूसरे दिन जो भाई काम लेने आए, दो रोज उनका भी पता नहीं । मिट्टी काढ़ते- ढाते बारह दिन बीत गए,छदाम का भी दर्शन नहीं हुआ । उधर खाते पर चावल-दाल-नमक-हल्दी-मिर्चा –ईंधन देनेवाला भला क्यों छोड़ने लगा ? कुदल रख ली, टोकरा रख लिया, धोती तक उतार ली ! कमर से गमछा लपेटे दो दिन, दो रात का भूखा मैं घर लौट आया हूँ ।"[8] इस व्यवस्था का विरोध करते हुए खुरकुन आवेश में कहता है " हे भगवान कैसा जमाना आ गया है ! पचास करोड़-पचास करोड़ रुपइया लगाकर दस-पंद्रह साल में कोसी-बांध तैयार होंगे, हजारों का महवारी चारा पानेवाले पचासों आफिसर बहाल हुए है । लाखों के ठेके मिले हैं ठेकेदारों को करोड़ों का सामान बीरपुर में लाकर अटा दिया गया ।

रात-दिन हवाई जहाज कोसी इलाके में मडराते रहते हैं । पानी की तरह रकम बहाई जा रही है । फिर गरीब मजदूरों के साथ ही सुराजी बाबू लोग इस तरह का खिलवाड़ क्यों करते हैं ? ऐसा अनर्थ तो न कभी सुना, न देखा ! हे भगवान, सृष्टि के इन्हीं तौर-तरीकों से तुम्हें अपने विधातापन का स्वाद मिलता है ? हिन्द-हितकारी समाज नहीं, पेट हितकारी समाज ! छी-छी-छी-छी....।" 9 में बाबुओं की संख्या बढ़ रही थी,गांधीजी ने जिस उद्देश्य से कांग्रेस की स्थापना की थी वह पार्टी केवल जमींदार वर्ग के लोगों का हित साधन का जरिया बन गया । एसे हित साधन के उपाय हम नागार्जुन के अन्य उपन्यासों में भी देख सकते हैं जहाँ वह सर्वहारा वर्ग को खुलकर लुटता है । भोला, खुरकुन, रंगलाल, टून्नी आदि जैसे सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे चरित्रों का जीवन संघर्षों तथा अभाव में बीतता रहा है वहीं पूंजीपति वर्ग ऐसे लोगों के शोषण करने के लिए किसी भी हद को पार कर रहा है । मोहन मांझी ऐसे ही सर्वहारा वर्ग के लोगों के अधिकार की रक्षा के लिए किसान सभा जैसे जुझारू संगठन का मेम्बर बनाकर संघर्ष करने की शक्ति अर्जित कर जमींदारों के विरुद्ध तैयार करता है । उन्होंने सारे किसान भाइयों को लेकर वार्षिक सम्मेलन करता है जिसमें यह निर्णय लिया जाता है कि "कम से कम पाँच वर्षो तक की मुहलत तक़ावी वसूली के लिए जरूर मिलनी चाहिए । इस निश्चित अवधि के बाद किसान तक़ावी की यह रकम अपनी सुविधा के अनुसार कई किस्तों में लौटाएँगे । एक दुसरे प्रस्ताव के द्वारा गढ़पोखर के तथाकथित ने मालिकों को यानि सतघरा के जमींदारों को सम्मेलन ने आगाह किया था कि वे युग की आवाज को अनसुनी न करें, मलाही-गोंढियारी के मछुओं को गरोखर से मछलियाँ निकालने के पुश्तैनी हकों से वंचित करने की कोई भी साजिश कामयाब नहीं होगी । रोजी-रोटी के अपने साधनों की रक्षा के लिए संघर्ष करनेवाले मछुए असहाय नहीं हैं, उन्हें आम किसानों और खेत-मजदूरों का सक्रिय समर्थन प्राप्त होगा...।"10 इस तरह "मछुआ –संघ का रुख साफ था । सर्वे की पुरानी सेटलमेंट से गढ़पोखर का राजस्व निर्धारित हुआ- सौ रुपए प्रति वर्ष; यह सरकारी खाते में जल-कर के तौर पर दर्ज होता आया था । देपुरा के जमींदार गढ़पोखर की तरफ से इतनी ही रकम साल-साल सरकारी खजाने में जमा करते आए थे । यह दूसरी बात थी कि साल-दो साल या दस-पाँच साल का बंदोबस्ती का पट्टा लिखकर देपुरा के मछुओं से काफी रकम ऐंठते आए थे और अब मछुओं में जन-जागरण का आभास पाकर इस झमेले से हमेशा के लिए छुटकारा पा गए थे । नए मालिक, सतघरवाले,अभी दस-पाँच वर्ष पुरानी अमलदारी से जितना-जो कुछ फायदा उठाने के सपने देख रहे थे । बस ये तथाकथित नए मालिक थे । गढ़पोखर के वास्तविक नए मालिक तो हमारी सरकार थी ... जमींदारी उन्मूलन के बाद देपुरावालों का कोई हक नहीं रहा गया था गढ़पोखर पर । यह विशाल जल-संपाती अब जनता की थी । मगर नौकरशाही भ्रष्टाचारों और कानून असंगतियों के चलते जन-जीवन के साथ नेतुका खिलवाड़ अब भी चल रहा था । मछुआ संघ की तरफ से कई मेमोरेंडम पाटन और दिल्ली के महाप्रभुओं की सेवा में भेजे जा चुके थे । लिखित और मौखिक दोनों प्रकार से जिला-अधिकारियों तक यह बात बार-बार पहुंचाई जा चुकी थी । मछुओं का संघ तय कर चुका था कि किसी भी स्थिति में घुटने नहीं टेकेंगे । सतघरावालों का नया प्रभुत्व गैर-कानूनी है, सर्वथा गलत है, वे गढ़पोखर के सीमाओं के अंदर उन्हें घुसने नहीं ददेंगे ।"[11] इसके लिए अन्ततः मंगल, माधुरी,नकछेड़ी आदि अपने अधिकार की रक्षा के लिए सभी को जेल जाने के लिए प्रस्तुत हो जाता है । नागार्जुन ने 'वरुण के बेटे' उपन्यास में वर्ग संघर्ष का चित्रण किया है । यह संघर्ष जमींदारों और मछुआरों के बीच है । कथा का आरंभ ही गरीब वर्गों की कहानी से होता है । यह मछुआरे संघर्ष के बावजूद अत्यंत गरीबी और फटेहाली का शिकार है । मल्लाही और गोढ़ियारी गाँव की गरीब जनता (मछुआरों) का संघर्ष ही उस उपन्यास का केंद्र-बिन्दु है । इस उपन्यास में कथाकार ने आम गरीब जनता को अधिक शक्तिशाली दिखलाने के लिए साम्यवादी दर्शन का प्रभाव ग्रहण किया है और सर्वहारा वर्ग में

राजनीतिक चेतना का सूत्रपात किए हैं । सतघरा के बाबू लोग गढ़-पोखर से मल्लाहों को बेदखल करना चाहते हैं। मैथिल जमींदारों के इस चाल के विरुद्ध मछुआरे संगठित होकर लड़ते हैं । बेटे' का निम्नवर्गीय पात्र गोनर बाबा कहते हैं " यह पानी सदा से हमारा रहा है किसी भी हालत में हम छोड़ नहीं सकते । पानी और मिट्टी न बिका है और न कभी बिकेगा । गढोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह हमारे शरीर का लहू है, जिंदगी का निचोड़ है ।"[12] इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र मोहन मांझी मछुआरों को अत्यधिक सचेत करते हुए कहता है –' गढ़-पोखर हमरे हाथों से न निकले इसके लिए हमें कोशिश करनी होगी । इस संघर्ष में निषाद महासभा नहीं, किसान सभा जैसी झुझारू जमात ही हमारी सहायता करेगी । यहाँ मछुओं के बीच स्पष्टतः वर्गीय चेतना को रेखांकित किया गया है । जहां जातीय संकीर्णता की कोई जरूरत नहीं दिख पड़ती। इस उपन्यास के मछुआरे जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए नारा लगाते हैं "इंकलाब जिंदाबाद...मछुआ संघ जिंदाबाद... हक की लड़ाई...जीतेंगे, जीतेंगे गढ़पोखर हमारा है, हमारा है ।"[13] नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मजदूरों और किसानों के बीच जागृत होते हुए वे वर्ग संघर्ष को रेखांकित किया है । उनके किसान-मजदूर पात्र अपने हक की लड़ाई लड़ रहे हैं और अधिकारों के लिए एकजुट हो रहे हैं । यह संघर्ष साम्यवादी राजनीति का द्योतक है ।

'वरुण के बेटे' नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण समाज सामंतवादी प्रभाव की गिरफ्त में है । पूंजीवाद और साम्यवाद के अवशेषों का तालमेल शोषितों के विरूध्द उभर कर आया है, किन्तु नागार्जुन इतिहास के इस नियम को प्रमुखता देते हैं कि परिवर्तन को रोक पाना बड़ी शक्तियों के लिए भी कठिन होता है । इसीलिए समाज की उपेक्षित इकाई एक दिन सचेत होती हैं, संगठित होती हैं और वही परिवर्तन की प्रक्रिया में सबसे आगे जाती हैं । नागार्जुन का उपन्यास का समाज शास्त्र अपने गहरे अर्थ में निम्नवर्गीय जनता की समस्याओं और उनके द्वारा संगठित होकर उसके प्रतिरोध करने के विभिन्न तरीकों तथा निरंतर जीवन संघर्ष से जुड़ा हुआ है । नागार्जुन अपने आलोचनात्मक विवेक से सभी उपेक्षित मछुआरा तथा अन्य जातियों को उसी किसान-मजदूर वर्ग से जोड़ते हैं जो सर्वहारा का वास्तविक रूप में प्रतिनिधित्व कर सके ।

संदर्भ सूची

1. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या -75, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,दूसरा संस्करण 2001
2. वरुण के बेटे-नागार्जुन पृष्ठ संख्या-26
3. वरुण के बेटे-नागार्जुन पृष्ठ संख्या-28
4. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-28
5. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-27
6. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-32-33
7. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-35
8. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-36
9. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-37
10. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-94
11. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-100
12. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-28
13. वरुण के बेटे- नागार्जुन, पृष्ठ संख्या-102
14. नागार्जुन की किसान चेतना-रविंद्र राय, जनपथ अक्टूबर 2011
15. बाबा नागार्जुन विशेषांक -संपादक अनंत कुमार सिंह